

ਮਾਨਕ ਭੀਵਨ

ਏਕ ਲਹੁਮੂਲਿਆ ਠਪਹਾਰ



— ਸ਼੍ਰੀਰਾਮ ਸ਼ਰਮਾ ਆਚਾਰ্য

मानव जीवन : एक बहुमूल्य उपहार

लेखक :

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं० - २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०१४

मूल्य : ७.०० रुपये

जो स्वयं बदल सकेगा, वही युग को बदलने की भूमिका भी संपादित करेगा। जो स्वयं कीचड़ में छूबा हुआ खड़ा है, वह अन्य किसी को स्वच्छ कैसे करेगा ? यदि हमने अपने को नहीं बदला और दूसरों को उपदेश करने का पाण्डित्य दिखाना जारी रखा, तो यह एक उपहासास्पद विडंबना होगी। अपनी गतिविधियाँ सुधारें और संसार हित में नियोजित करें, तो सत्परिणाम निश्चित रूप से सामने आएगा।

जीवन जीने की कुशलता

प्रत्यक्षतः साधनों का महत्त्व ही माना जाता है, दिखाई भी आँखों से वही पड़ता है। उन्हीं के आधार पर किसी की क्षमता, योग्यता, सफलता का अनुमान लगाया जाता है, पर यह स्थूल दृष्टि है। स्थूल ही नहीं, अवास्तविक भी, क्योंकि साधन कितने ही विपुल क्यों न हों अंततः वे होते पदार्थ ही हैं। पदार्थों को कोई भी व्यक्ति खरीद और सजा सकता है। भले ही उस विषय में वह प्रवीण-पारंगत न हो।

बाजार में बहुमूल्य वस्तुओं की दुकानें होती हैं। उन्हें यथास्थान रखने से लेकर बेचने तक का काम मुनीम-गुमाश्ते करते हैं। वे वस्तु की विशेषता बताने से लेकर ग्राहक को लुभाने, खरीदने के लिए आतुर करने तक का काम करते हैं। उन्हीं की कुशलता से दुकान चलती हैं। मालिक भरपूर लाभ उठाता है, पर इनमें से एक भी ऐसा नहीं होता, जो उन पदार्थों के संबंध में गहरी प्रवीणता रखता हो, जो इन्हें चलाकर, बनाकर दिखा सके। स्पष्ट है, उनके साधन जुटाने और उन्हें सजाने की योग्यता भर पाई है। बैंक से रुपया कर्ज लेने, मौके की दुकान उपलब्ध करने, मुनीम, गुमाश्ते फुर्तीले व्यक्ति नियुक्त करने, वस्तु का विज्ञापन करने जैसी कलाएँ जानी हैं। उन मशीनों को अच्छी तरह चलाना, जहाँ खराबी आने लगी है, उसे दुरुस्त कर देना उनका काम नहीं है, जो मालिक बने हुए हैं और इज्जत तथा पैसा कमाते हैं। बहुमूल्य मशीनों की सजी-धजी लाखों की पूँजी वाली मशीनों तथा दुकानों की वास्तविक स्थिति यही होती है। देखने वाले भले ही मालिक को सारा श्रेय देते रहें।

हलवाई की छोटी-सी दुकान का उदाहरण लीजिए। उसमें मिठाइयाँ बनाने वाले कारीगर अलग होते हैं। वे चुपचाप अपने कोने में बैठे मिठाइयाँ बनाने में लगे रहते हैं। किसी में कुछ खराबी आ जाए, तो उसे नया उपाय अपनाकर सुधारना भी वे ही जानते हैं। उनके कला-कौशल से ही दुकान प्रख्यात होती

है। ग्राहक उसी के कारण टूटते हैं और मालिक इसी आधार पर मालदार बनते हैं, किंतु दुकान पर काम करते हुए दूसरे ही दस आदमी दीख पड़ते हैं। सजाकर रखने वाले, सफाई तथा स्टोर वाले, यही सब दुकान पर काम करते हुए दिखाई पड़ते हैं। ग्राहक उन्हीं को पहचानते हैं। दुकान उन्हीं के बलबूते चलती दिखाई पड़ती है। मालिकी का यह परिचय बड़े वाले बोर्ड से मिलता है, किंतु यह रहस्य बिरलों को ही मालूम है कि उस दुकान की चसकदार मिठाइयों की ख्याति किसकी विशेषता पर निर्भर है। वह तो अपना कौशल बढ़ाता और चुपचाप बैठा अपना काम करता रहता है। यही बात मशीनों की, दर्जी की या दूसरी तरह की दुकानों के संबंध में भी कही जा सकती है। उनका प्रत्यक्ष, प्रदर्शनात्मक, साधनपरक रूप बनाकर खड़ा कर देना एक बात है और विशिष्टताओं के आधार पर ख्याति और प्रामाणिकता एकत्रित करना दूसरी। सफलताओं का श्रेय किसे मिले, इसकी साधारण दृष्टि दूसरी होती है और विशेष, बारीक, गहरी दृष्टि दूसरी।

जीवन बहुमूल्य फर्म है। इसमें भी प्रत्यक्ष साधनों का ही महत्व दीखता है। मोटी परख उतना ही पकड़ पाती है। भगवान का दिया हुआ सौंदर्य, पूर्वजों का छोड़ा हुआ धन, बैंक का सहयोग, उपयुक्त स्थान पर दुकान, कुशल कर्मचारी आदि का श्रेय संयोगों को ही दिया जा सकता है। व्यक्तित्व को श्रेय तब मिलता है, जब अनायास उपलब्ध हुए साधन हाथ में न होते और अपनी ही सूझ-बूझ अथवा दौड़-धूप से सारा सरंजाम जुटाया गया होता। महामानवों के छोटे काम भी उनके यश को अजर-अमर बना देते हैं, जबकि धन-कुबेरों का आकाश-पाताल जितना खर्च किया हुओ लगाया गया धन लोगों की आँखों तले नहीं आता, क्योंकि मानवी विवेक बुद्धि यह पहचानती है कि साधनों का बाहुल्य और व्यक्तित्व का स्तर इन दोनों के बीच क्या अंतर होता है और दोनों में से किसे कितनी श्रद्धा, सराहना मिलनी चाहिए।

प्रसंग मानव जीवन के गौरव का है। जिसे अधिक साधन,

सरंजाम, पद, सम्मान प्राप्त है, वह चमड़े की आँखों को ही चकाचौंध में डाल सकता है, उसे उसका सौभाग्य भी कहा जा सकता है, पर जिनके पास सूक्ष्म बुद्धि है, विवेक दृष्टि है, वह मात्र एक ही बात देखता है कि कर्ता के निजी व्यक्तित्व की उत्कृष्टता का उसमें कितना समावेश हुआ है।

साधन जड़ है और कौशल चेतना। साधन जमा कर लेना और उनसे बनी गड़ी को पटरी पर लुढ़का देना किसी के लिए भी सरल है, किंतु अपनी आंतरिक उत्कृष्टता की छाप किसी पर छोड़ना सर्वथा दूसरी। व्यक्तित्व के चिंतन, चरित्र और व्यवहार में जितनी उत्कृष्टता और प्रामाणिकता होती है, उसी अनुपात से अन्यान्यों की अंतरात्मा तक गहरी छाप पड़ती है। इसी आधार पर प्राप्त हुई सफलता अभिनंदनीय और अनुकरणीय बनती है। हर काम में आकर्षण और दबाव आते हैं। इनसे विचलित न होना और उत्कृष्टता को हर कीमत पर बनाए रहना, सामान्य काम नहीं है। असफलताएँ, विपरीत परिस्थितियाँ और आक्रामक प्रतिकूलताएँ विशेषतया आदर्शवादी जीवनचर्या के साथ छेड़खानी करती रहती हैं। कभी—कभी तो वे इतनी भारी और विकट होती हैं कि आदमी को हताश, उद्विग्न कर देती हैं। कभी ऐसी होती हैं कि दूसरे दुनियाँदारों की तरह ओछे हथकंडों पर उतर कर किसी तरह काम चलाना पड़ता है। ऐसे ही अवसर परीक्षा की घड़ी होते हैं। यह आग से खेलना है। इस भट्टी में से खरा सोना ही पास होता है।

आदर्शवादी जीवन को विशेषतया ऐसी प्रतिकूलताओं का सामना करना पड़ता है। उनसे पार होना सिद्धांतवादी हिम्मत और दृढ़ता का काम है। वह न हो तो घाटा सहकर, मुसीबत में पैर जमाए रहना हर किसी का काम नहीं है। यह मात्र चरित्रवानों के लिए ही संभव है। चरित्र का अर्थ है—महान् मानवीय उत्तरदायित्वों की गरिमा को समझना और उसका हर कीमत पर निर्वाह करना।

इस आकाश में जमीन से बहुत ऊँचाई पर ग्रह, तारक टँगे हुए और चमकते हुए दिखाई पड़ते हैं। यह उनका विस्तार और

प्रकाश ही है, जो चिर अतीत से लेकर अद्यावधि यथावत् यथास्थान चमकता दिखाई पड़ता है। आकाश में उड़ने वाले झंझावात उनकी स्थिरता और गरिमा को कोई आघात नहीं पहुँचा पाते। मनुष्य की गरिमा भी ऐसी ही है, जो यदि आदर्शवादी कौशल के अनुरूप गढ़ी और ढली हो, तो उसके पतन पराभव का कोई कारण नहीं बनता। यों जब-तब तो छोटी बदली भी सूर्य-चंद्र के प्रकाश को धूमिल करती देखी गई है।

जीवन मनुष्य के हाथों में सौंपा गया सबसे शानदार और महत्वपूर्ण दायित्व है, जिससे उसे सँभाले रहना और शानदार बनाए रहना सीख-समझ लेना चाहिए कि उसी की कुशलता और विभूति सत्ता सराहनीय है, जिसके पास ऐसी कीर्ति संपदा है, वे साधनों के अभाव में भी ऊँचे उठते और सफल होते हैं। अनेकों को प्रकाश देना और पार करना ऐसे ही प्रतिभावानों का काम है।

सुशिक्षित व्यक्ति की सही पहचान :

महान् शिक्षा शास्त्री और कोलंबिया विश्व विद्यालय अमरीका के कुलपति श्री ग्रेसन कर्क को एक बार “सुशिक्षित कहलाने का अधिकार किसे दिया जाए” इस विषय पर विचार व्यक्त करने के लिए न्यूयार्क शहर में आमंत्रित किया गया। भाषण और विचारपूर्ण अभिव्यक्ति दो विभिन्न तत्त्व हैं। भाषण कोई और भी कर सकता है, पर किसी विषय का गंभीर विवेचन हर किसी के लिए संभव नहीं। शिक्षा की दृष्टि से आज के उलझे संसार में श्री ग्रेसन कर्क ने उक्त विषय पर जो लेख पढ़कर सुनाया, उसे सारे विश्व के शिक्षाशास्त्रियों और प्रबुद्ध व्यक्तियों ने “विचारोत्तेजक लेख” की संज्ञा दी। उनके वह माननीय एवं पठनीय विचार ही यहाँ प्रस्तुत हैं, जो जीवन जीने की कला पर विशेष प्रकाश डालते हैं।

“व्यक्ति सुशिक्षित है, इस बात की परख करनी है, तो हमें चार तथ्यों को आधार मानना पड़ेगा।” (१) क्या वह जो कुछ बोलता या लिखता है, वह सुनिश्चित और लगाव-लपेट रहित, स्पष्ट होता है। (२) उसने जो कुछ पढ़ा है, उससे कुछ आदर्श

और आस्थाएँ जीवन में उतारी हैं या नहीं, यदि उतरी तो क्या उसमें इतना साहस है कि वह उनके लिए कैसे भी बुरे समाज से लड़ पड़े। (३) समाज सुधार की प्रक्रिया में क्या वह इस तरह की ईमानदारी, सद्भाव और सहिष्णुता व्यक्त कर सकता है, जैसे एक माँ अपने प्रिय बेटे के लिए ? (४) इतने पर भी वह निराश तो नहीं होता ? बुरी से बुरी परिस्थितियों में यदि वह आशावादी है, तो निस्संदेह वह सुशिक्षित कहलाने का पात्र है।” आइए इन चारों का एक-एक करके खुलासा करें।

(१) हमारे सामने दो व्यक्ति हैं, एक गाँव से आया है, अनपढ़ है, दूसरा शहरी है, शिक्षित है। पहले व्यक्ति से हम प्रश्न करते हैं, क्या आपको मार्ग में अमुक व्यक्ति मिला था ? इसके उत्तर में वह जबाव देगा—शायद मिला तो था, गुझे ऐसा लगता है कि वह सफेद कुर्ता और धोती या पाजामा पहने था, अच्छी तरह देखा नहीं, उसके हाथ में मेरे ख्याल से कोई वस्तु थी। अभिव्यक्ति का यह अनिश्चयात्मक ढंग यह बताता है कि वह व्यक्ति विचारशील नहीं है। यदि वह विचारशील रहा होता, तो एक ही दृष्टि में उसने उस व्यक्ति का सारा खाका अपने मस्तिष्क में उतार लिया होता। उसकी दृष्टि गहरी और पैनी नहीं थी। वह एक उथला व्यक्ति था इसलिए उसके सामने जो कुछ भी आया उसने अस्तव्यस्त ढंग से देखा और वैसा ही बर्ताव किया।

शिक्षित व्यक्ति को उसी प्रश्न का उत्तर निश्चयात्मक ढंग से देना चाहिए। उसके विचारों में स्पष्टता के साथ ही कला और शृंगार भी होना चाहिए, तभी यह कहा जा सकता है कि वह सुशिक्षित है। अस्तव्यस्त भाव उसे व्यक्त नहीं करने चाहिए। इसी प्रकार पांडित्य प्रदर्शन के दंभ में पड़कर ऐसा भी नहीं बोलना चाहिए कि प्रश्नकर्ता कुछ समझ न सके। उसे कहना चाहिए—मित्रवर ! मुझे वह सज्जन जब मैं रेलवे पुल पार कर रहा था तब मिले, उनके हाथ में पुस्तक थी। कमीज—पायजामा पहने वे बहुत अच्छे लग रहे थे। अभिव्यक्ति अंतःकरण का स्वरूप प्रस्तुत करती है, इसलिए सुशिक्षित की पहली परख यह है कि अभिव्यक्ति में गंभीरता, स्पष्टता और कलात्मकता होनी चाहिए,

यदि वह असभ्य संदिग्ध भाषण करता है, तो वह पढ़ा-लिखा होकर भी सुशिक्षित नहीं है। चाहे वह शहर में ही रहता हो और उसने कोई भी डिग्री प्राप्त की हो।

(२) एक समय वह था, जब हमारे पूर्वज मार्गदर्शक, नीतिज्ञ, उदार चरित्र वाले होते थे। उन्होंने धर्म-मर्यादाएँ, सामाजिक अनुशासन, परंपराएँ और रीति-रिवाज इस ढंग से बना दिए थे कि आने वाली पीढ़ी उनका अनुसरण करने मात्र से ऐसे आदर्श तथा आस्थापूर्ण जीवन ग्रहण कर लिया करती थी। व्यक्ति गीली मिट्टी है, तो पूर्वज साँचे। साँचे में जैसे मिट्टी डाल दी जाती थी, व्यक्ति का स्वरूप वैसा ही निखर आता था। आज वह परिस्थितियाँ बदल गई हैं। आदर्श और शब्दा के लिए इन दिनों जीवन में कोई स्थान नहीं रहा। उनके लिए लड़ने की हिम्मत की बात तो सोची भी नहीं जा सकती। बड़ों के जीवन में कोई क्रमबद्धता न होने पर परिणाम यह है कि पीढ़ियाँ उच्छृंखल और अनुशासन विहीन हो चलीं। ऐसी स्थिति में सुशिक्षित कहलाने का अधिकार उसे मिलेगा, जो वर्तमान के विचार जंजाल में से आदर्श और आस्थाएँ स्वयं ढूँढे और चुने। उसमें इतना विवेक होना चाहिए कि उसकी रुचि कुछ ऐसी सुंदर हो कि प्रत्येक अच्छाई को वह दूर से देखकर पहचान ले और जब उन्हें जीवन में धारण करने का प्रश्न आए, तो किसी भी विरोध का सामना करने के लिए तैयार रहे। अपने विवेक की रक्षा के लिए उसे अपने माता-पिता से भी लड़ने में नहीं हिचकना चाहिए।

आदर्श और अनुशासन का चोली-दामन का साथ है। जिनके जीवन में आदर्श नहीं होता, वही अनुशासनहीन और अराजकतावादी होते हैं। सुशिक्षित में आदर्श का स्थान एक अनिवार्य आश्यकता है, क्योंकि उसी पर समाज की व्यवस्था और शांति टिकी होती है।

(३) व्यक्ति का आदर्शवादी होना ही पर्याप्त नहीं। यदि वह सामाजिक बुराइयों के प्रति सहिष्णु और उन्हें सद्भावनापूर्वक दूर करने के लिए कृत-संकल्प नहीं होता, तो उसे रोजी और

रोटी के लिए जिंदा नहीं रहना चाहिए। प्राचीनकाल के ब्राह्मण अपने जीवन का उपयोग समाज को उन्नत बनाने में किया करते थे। उनके सामने जीवन के अन्य विषय गौण थे। उनकी हमदर्दी को समझकर ही समाज ने उनकी लौकिक आवश्यकताएँ पूर्ण करने का कर्तव्य निभाया था। आज का शिक्षित व्यक्ति यदि अपने लौकिक स्वार्थ की उपेक्षा कर समाज को भलाई का रास्ता दिखाने को कठिबद्ध हो जाता है, तो समाज उसकी आवश्यकताएँ भी पूरी करने से पीछे न रहेगा, पर अपनी उस निष्ठा को अभिव्यक्त कर सुशिक्षित होने की कसौटी पर खरा उतरना प्राथमिक आवश्यकता है। उसे क्रास करके सीधे कोई समाज का हितैषी बनना चाहे, तो बन भी नहीं सकता।

(४) आज अनुशासनहीनता, उच्छृंखलता, उद्दंडता और यौन स्वच्छंदता जैसी बुराइयों की बाढ़ आ गई है। बुद्धि, कौशल और कलाकारिता सब मिलकर इन्हें ही पनपा रहे हैं। वैज्ञानिक और बुद्धि जीवी भी अपने अहंकार की पूर्ति के लिए संसार को विनाश की ओर घसीटे लिए जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में समाज सुधार की बात सोच सकना भी कठिन है। ऐसे व्यक्ति के सामने आते ही सारा संसार उसका विरोधी हो गया लगता है। इसलिए बुराइयों से लड़ने की हिम्मत से पहले एक बात निश्चित कर लेनी चाहिए कि हमारा अस्तित्व भले ही न रहे, पर हमें विश्वास है कि हम समाज को सीधे रास्ते पर ला सकते हैं। वर्तमान परिस्थिति में यह आशा ही दीर्घकालीन साहस और शक्ति प्रदान कर सकती है। बच्चे के प्राण निकलने तक जिस प्रकार माँ को यह आशा बनी रहती है कि बच्चा स्वस्थ अवश्य हो जाएगा। मृत्यु की तो वह कल्पना ही नहीं करती। उसी प्रकार सुशिक्षित की अंतिम परख है कि उसे भीषण परिस्थितियों में भी निराश नहीं होना चाहिए। उसे यह समझना चाहिए कि समाज सुधार शिक्षित का अनिवार्य धर्म कर्तव्य है, उसे पूरा करने में किसी प्रकार के फल की भी आशा नहीं करनी चाहिए। यह निष्ठा ही शिक्षित और सुशिक्षित कहलाने का गौरव प्रदान कर सकती है और असुंदर को सुंदर बना सकती है।

व्यवहार की शिष्टता :

प्रत्यक्ष फलदायी

कौन व्यक्ति कैसा है ? इस वास्तविकता का पता लगाना कठिन है। इसके लिए लंबे समय का सान्निध्य और गतिविधियों का गंभीरतापूर्वक पर्यवेक्षण करना पड़ता है, उसमें कमी रहे, तो संपर्क क्षेत्र के लोगों के संबंध में भी गलतफहमी रह जाती है, जिसे खरा समझा गया था, वह खोटा निकलता है। कई बार उपेक्षितों में भी ऐसे निकल पड़ते हैं, जिन्हें कीचड़ का कमल या कोयले की खान का हीरा कहा जा सके, किंतु यह सब गहरी जाँच-पड़ताल करने पर ही पता चलता है। सामान्य परिचय से उस बारीकी का पता नहीं चल पाता। ऐसी दशा में समीपवर्ती लोगों के संबंध में वास्तविकता की जानकारी नहीं हो पाती। इस अनभिज्ञता के कारण कई बार धोखा और जोखिम भी उठाना पड़ता है।

मोटी परख का एक सरल तरीका है—शिष्टाचार का अवलोकन। सभ्य व्यक्ति की वाणी में शालीनता होती है, जो मुँह खोलते ही प्रकट होती है। अपनी अभिव्यक्ति नागरिक स्तर की होना और दूसरों के प्रति आदर का भाव प्रकट करना यह दोनों ही परस्पर मिलकर वाणी की शालीनता प्रकट करते हैं। यह परिचय लेखनी से भी मिलता है, किसी के पत्र किस स्तर के हैं, उनमें क्या अभिव्यक्तियाँ प्रकट होती हैं ? उसे सहज ही जाना जाता है। वार्ता शुरू करने वाला और उसका उत्तर देने वाला अपने कथन में नम्रता, सद्भावना का पुट कितनी मात्रा में रख रहा है। इसे देखकर तीसरा समीप बैठा व्यक्ति यह अनुमान लगा सकता है कि दोनों पक्षों में से किस में कितनी मात्रा में सज्जनता है ? वस्तुतः सज्जनता का व्यवहार ही किसी व्यक्ति के

स्तर का परिचायक है, इस जानकारी के बाद ही यह प्रश्न उठता है कि किसके साथ, किस प्रकार का व्यवहार किया जाए, संपर्क जोड़ा जाए, सहयोग दिया जाए ? वाणी को प्रवक्ता का पद दिया गया है, वह जब बोलना प्रारंभ करती है तो मात्र कामकाजी प्रसंगों को ही नहीं निपटाती, वरन् बोलने वाले की शालीनता का स्तर भी खोल कर रख देती है। उसमें शब्दभाव ही नहीं होते, साथ में ऐसी गंध भी घुली होती है, जिससे आदमी के मर्मस्थल को पहचाना जा सके। इसलिए न केवल बोलते समय हमारी शब्दावलि शिक्षितों जैसी होनी चाहिए, वरन् साथ में सद्भावना की मिठास भी घुली रहनी चाहिए। उसमें से फूलों जैसी मधुर गंध उठनी चाहिए—सज्जनता की।

वाणी प्रथम प्रयोग है। वह इतनी सशक्त है कि शब्द कुछ भी हों, बोलने वाले की सुसंस्कारिता—कुसंस्कारिता का परिचय खुले पन्नों की तरह प्रस्तुत कर देते हैं। इसके बाद शिष्टता की परिधि में व्यवहार के शब्द आते हैं। जैसे बैठने के लिए स्वेच्छा से वह जगह चुनना, जो सर्वसाधारण के लिए मानी जाती है। वहाँ बैठने के बाद यदि ऊँचे आसन पर निकट आकर बैठने के लिए विशेष आग्रह किया जाए, तो ही बैठना चाहिए। देखते ही आगंतुक का मुस्करा कर स्वागत करना, उसके आगमन को प्रसन्नता का विषय बताना, समुचित आसन देना, कुशल समाचार पूछना, यह प्रारंभिक स्वागत ऐसा है, जो काम छोड़कर भी किया जाना चाहिए। इसके बाद यदि जरूरी काम रुका पड़ा हो, तो उसके लिए आज्ञा माँगकर अपना आवश्यक काम करने के लिए चला जाना चाहिए। अतिथि का कम से कम जल से तो स्वागत करना ही चाहिए। कोई सर्वथा निरर्थक आदमी हो और उससे पीछा छुड़ाना आवश्यक हो, तो जल्दी निबटा देने की बात दूसरी है। फिर भी अपनी ओर से तो यथासंभव शिष्टता का निर्वाह होना ही चाहिए। चाहे उसका निर्वाह कितना ही सीमित क्यों न बन पड़े, वाणी का शिष्टाचार हर हालत में निबाहा जाए। किसी से कटु शब्द न बोले जाएँ, न किसी को

धमकी—चुनौती आदि दी जाए। दूसरा असभ्यता पर उतरे, तो उसे अपनी भँड़ास निकाल लेने दी जाए, बाद में अवसर पाकर उसे वस्तुस्थिति समझा दी जाए।

शिष्टता एक उपयोगी, लाभदायक और समाधानकारक प्रवृत्ति है। इसके विपरीत उजड़ा मन से दूसरों का जितना अपमान होता है, उससे कहीं अधिक अपनी बेइज्जती होती है। इसलिए समझदारों में से किसी को भी यह घाटे का सौदा हाथ में नहीं लेना चाहिए।

देखा गया है कि अशिष्टता बरतने का, आवेश में आकर उबल पड़ने का स्वभाव बचपन से ही आरंभ होता है और वह धीरे—धीरे जड़ पकड़ता जाता है। बड़ा होने पर पक जाता है और फिर उससे पीछा छुड़ाना कठिन पड़ता है। इसलिए सतर्क अभिभावकों को, अध्यापकों को बच्चों के संबंध में कामकाजी बातों के अतिरिक्त यह भी ध्यान रखना चाहिए कि कहीं उनकी आदतों में अनौचित्य तो घर नहीं कर रहा है। कुटेबों में गंदा रहने की आदत की तरह अशिष्ट व्यवहार करने की बात भी अखरने वाली है। इसके लिए उन्हें आरंभ से ही टोका और सिखाया जाए। बच्चों को उपदेश प्रायः कम याद रहते हैं। अच्छा तरीका यह है कि उनके साथ अच्छा व्यवहार करके बदले में वैसा ही अनुकरण करने का अवसर दिया जाए।

वार्तालाप में उन्हें आप कहकर बोला जाए, नाम के साथ 'जी' शब्द और जोड़ा जाए। उनसे वार्तालाप सज्जनता की भाषा में किया जाए और व्यवहार शिष्टता की मर्यादाओं के अनुरूप हो। इस विषय का वे अनुकरण करना आरंभ करते हैं और शालीनता के ढाँचे में ढलते जाते हैं। न 'तू' शब्द उन्हें बोला जाए और न उसकी प्रतिक्रिया उत्पन्न होने दी जाए। ऐसा करने से वे शिष्टता के व्यवहार की मान-मर्यादा से अवगत हो जाते हैं और उसके निर्वाह के अभ्यस्त हो जाते हैं। कपड़ों को, बालों को, बैठने के ढंग को भी इसी ढाँचे में ढाला जाए, क्योंकि न केवल बोलचाल से वरन् रहन—सहन और रीति—नीति से भी

यह पता चलता है कि क्या उचित है और क्या अनुचित ? यों चिंतन और चरित्र भी उत्कृष्टता और आदर्शवादिता से भरा हुआ होना चाहिए, किंतु वह सब तो देखने पर अपनी स्थिति का परिचय देता है। सर्वप्रथम पहले साक्षात्कार में ही यह बात प्रकट हो जाती है कि कौन व्यक्ति किस स्तर का है ? उसके व्यक्तित्व का वजन कितना है ? यह जाँच-पड़ताल वार्तालाप में घुली रहने वाली वस्तुस्थिति और रहन-सहन की प्रक्रिया परिपाठी से ही प्रकट होती है। इसलिए जो प्रत्यक्ष है, उसके बारे में और भी अधिक सतर्क रहने की जरूरत है।

बच्चों जैसी शिक्षा न दी जा सके, तो भी बड़ी आयु के अनगढ़ों से भी वैसा ही व्यवहार करना चाहिए। बड़ी आयु हो जाने पर भी कितने ही लोग गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से बचकाने ही बने रहते हैं। उन्हें प्रौढ़ शिक्षा स्तर पर पारस्परिक व्यवहार में सज्जनता बरतने का पाठ किसी भी आयु में पढ़ाया जा सकता है। इसका सीधा और सरल तरीका एक ही है अपनी ओर से हर स्थिति में शालीनता बरती जाए। दूसरे ने क्या कहा और क्या किया, उसके लिए ठीक वैसा ही व्यवहार करना तर्क की दृष्टि से तो ठीक हो सकता है, पर उसके दूरगामी परिणाम अनुपयुक्त ही होते देखे गए हैं। विचारशील भावी परिणति और संभावनाओं को ही महत्त्व देते हैं और आशाजनक परिणतियाँ उत्पन्न करने के लिए सज्जनोचित व्यवहार के रूप में बीजारोपण करते हैं।

अतिथि सत्कार के अलावा विचार विनिमय के अवसरों में भी प्रायः शिष्टाचार का प्रकटीकरण होता है। पत्राचार में भी भाव-संवेदनाओं की झलक रहती है। निजी रहन-सहन, चाल-ढाल, रुझान-हलचल में भी वह तथ्य भीतर से उभर कर बाहर आता है। शिक्षितों को उनकी चाल-ढाल, भाव-भंगिमा से सहज पहचाना जा सकता है। इसी प्रकार अशिष्टों की अनगढ़ हरकतों से भी यह जाना जा सकता है कि उनका स्तर क्या है? कपड़े मैले-कुचैले, बटन खुले, जूते फटे, बाल बिखरे देखकर

भी किसी की असभ्यता को आँका जा सकता है। सभ्य-सामाजिक बनने के लिए हर किसी को अपनी चेष्टाएँ ऐसी रखनी पड़ती हैं कि प्रथम साक्षात्कार में ही दूसरों पर छाप पड़े और उलटकर सम्मान-सहकार मिले।

अपने परिवार में भी शिष्टता के वातावरण का प्रचलन रहना चाहिए। सभी सदस्य एक-दूसरे को सम्मान दें, उचित मर्यादा में प्रशंसा करें और प्रोत्साहन दें। दिल तोड़ने वाली, निराश करने वाली बातें न कहें। सम्मान से सद्भाव बढ़ता है, शिष्टता बरतने वाला सम्मानित होता है और अनायास ही दूसरों का सद्भाव-सहयोग अर्जित होता है। साथ ही अपने विकसित व्यक्तित्व की दर्शकों पर भी वह छाप छोड़ता है, यह एक प्रकार से प्रत्यक्ष लाभ का सौदा है।

वार्तालाप भी एक कला—कौशल :

रोजमरा के जीवन में हम ऐसे कई व्यक्ति देखते हैं, जिनकी न कोई बात मानता है, न उनका कोई सच्चा मित्र, हितैषी, शुभचिंतक ही होता है। वे जिससे भी बात करते हैं, वही उनका शत्रु बन जाता है। इसका कारण होता है—व्यक्ति का वार्तालाप करने का ढंग। जिससे भी बातें करते हैं, ऐसी भूल कर जाते हैं कि सामने वाले के अंतःकरण पर चोट कर जाती है। वह उसके प्रति गलत धारणा बना लेता है, अन्यथा वाक्‌चातुरी और व्यवहार-कुशलता के बल पर तो पूरा व्यावसायिक क्षेत्र ही चल रहा है।

बातचीत करना वस्तुतः एक कला है अन्यथा बातें तो गूँगे—बहरों को छोड़कर सभी करते और सुनते हैं, लेकिन कौन किसका किस प्रकार प्रभाव ग्रहण करता है, इसका आकलन किया जाए, तो यही ज्ञात होगा कि कई लोगों की बातें उबा देने वाली या मन खट्टा कर देने वाली अथवा हृदय को चोट पहुँचाने वाली होती हैं। कई व्यक्तियों की बातें सुनकर ऐसा लगता है कि उनकी बात का न सिर है न पैर। न तो वह अपने शब्दों का प्रयोग समझ-बूझ कर करते हैं, जिससे श्रोता प्रभावित

हो सकें, न ही वह यह जानकर बातें करते हैं कि किस अवसर पर कैसी बात करनी चाहिए, क्योंकि उन्हें इस संबंध में कोई ज्ञान नहीं। फलतः उनकी बात बोरियत लाने वाली और अप्रासंगिक ही हो जाती हैं।

विश्व विख्यात विचारक स्वेट मार्डेन के अनुसार व्यवहारिक जीवन की सफलता के लिए वाक्‌चातुर्य के साथ व्यवहार कुशलता, शिष्टता, सज्जनता, मधुरता आदि सद्गुण यदि व्यक्ति के जीवन में समाहित हो जाएँ, तब जीवन संग्राम में सफलता मिलना सुनिश्चित है। श्रेष्ठ वाक्‌पटु होना, लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करना तथा उनसे सहयोग प्राप्त करना, अपनी बातचीत में प्रभाव उत्पन्न करना एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

व्यवहार कुशलता और वाक्‌चातुर्य पुस्तकों का विषय नहीं है। न वह उपदेश सुनकर ही सीखा जा सकता है। यह अंतरंग का विषय है, यह विवेक से प्राप्त होता है। फिर भी कुछ ऐसे सूत्र हैं, जिनके आधार पर विवेक जागृत किया जा सकता है और अनुभव के आधार पर वाक्‌पटुता अर्जित की जा सकती है। वाक्‌पटुता के लिए पहली शर्त यह है कि मन से झिझक निकाल देनी चाहिए। संतुलन व धैर्य बनाकर रखा जाना चाहिए, अधीरता और अनिश्चितता की मनःस्थिति नहीं रहनी चाहिए। शब्द विन्यास में मधुरता, शालीनता और सौहार्दता जरूरी है। भाषा का सारगर्भित, अर्थपूर्ण होना जरूरी है। सुनने वाले की रुचि का ध्यान रखकर संक्षिप्त रूप से बात समाप्त करने की आदत डालनी चाहिए। अभद्र और गंदे उदाहरण, अपशब्द और व्यंग्यात्मक, आलोचनात्मक भाषा का प्रयोग शिष्ट लोगों के लिए शोभा नहीं देता, अतः वार्तालाप में इसका विशेष ध्यान देना चाहिए।

जहाँ तक संभव हो सके अपनी बात संक्षिप्त और अर्थपूर्ण कहने की आदत डालनी चाहिए। इससे गलतियाँ भी कम होती हैं और वार्तालाप भी अर्थपूर्ण बना रहता है। कुशल बातचीत के

लिए बातूनी होना कोई आवश्यक नहीं है। वस्तुतः वाक्‌चातुरी और अधिक बोलने में परस्पर कोई संबंध ही नहीं है, दोनों अलग-अलग हैं। वाक्‌चातुर्य जहाँ एक गुण है, वहीं वाचालता की गणना दोषों में की जाती है। अतः वाक्‌पटुता हासिल करने के लिए यह भ्रम मन से ही निकाल देना चाहिए कि वाक्‌पटु को बोलते रहना चाहिए। नपे-तुले और सार्थक शब्दों में मंतव्य पूरा कर लेने की बात का अभ्यास अधिक उपयुक्त रहता है। ऐसे लोग सामाजिक जीवन में सफल होते हैं और सम्मान पाते हैं। वाचाल और कम जानकारी रखने वाले हल्के स्तर के माने जाते हैं और असम्मान के पात्र बनते हैं। सही अर्थों में व्यक्तित्व संपन्न वे ही होते हैं, जिन्हें सही समय पर सही बात बोलना आता है।

प्रशंसा की सृजनात्मक शक्ति

गहन अंतस्तल में एक चेतन चिनगारी ऐसी है, जो अपना सम्मान चाहती है, गौरवास्पद बनाने के लिए आकुल-व्याकुल रहती है। इस तड़पन की तृप्ति जहाँ से होती है, वह उसे प्रिय लगने लगती है। प्रशंसा एक प्रकार का प्रोत्साहन है, एक संदेश है, जो प्राणी को साफ-साफ बता देता है कि उसे किस रूप में पसंद किया जाता है। खिलाड़ियों को सिखाते समय जब शिक्षक हाँ या शावास कहता है, तो वह उन्हें प्रोत्साहित करके उनके अंग चालन प्रक्रिया पर अपनी स्वीकृति वाली मुहर लगा देता है, उसका अधिकाधिक उपयोग करके खिलाड़ी दक्ष बनता है।

प्रशंसा करने का, प्रोत्साहित करने का अवसर जब भी मिले उसे व्यक्त करने से न छूका जाए। इससे प्रशंसक की भी प्रतिष्ठा बढ़ती है। इसके अतिरिक्त इसी के बल पर अग्रिम मार्गदर्शन एवं दोष निवारण भी बन पड़ता है। प्रोत्साहन प्रशंसा शिक्षण प्रक्रिया का एक अति आवश्यक और व्यावहारिक अंग ठहरता है।

चित्रकला का एक अध्यापक कक्षा में गृहकार्य न करने वाले छात्रों को लंबी लताड़ सुनाया करता था। एक दिन उसने नया प्रयोग करना इस प्रकार का आरंभ किया कि जिन विद्यार्थियों ने गृहकार्य कर लिया था उनकी एवं उनके कर्तृत्व की सराहना कक्षा में की जाए। इसका परिणाम यह हुआ कि न केवल होम-वर्क करने वालों की संख्या द्विगुणित हो उठी, अपितु अध्यापक भी विद्यार्थियों में और प्रिय होने लगा।

संसार में सर्वथा गुण विहीन व्यक्ति कोई नहीं। तलाश करने पर बुरा लगने वाले व्यक्ति में भी कुछ न कुछ गुण मिल सकते हैं। बिना झूँठ बोले भी व्यक्ति में जो प्रत्यक्ष या परोक्ष गुण दीख पड़ें, उसकी चर्चा कर देना अपनी सद्भावना का प्रकटीकरण है, जिससे व्यक्ति अनुकूल भी बनता है। नरम पड़ने पर, अपनी ओर झुकने पर उन परामर्शों को भी दिया और स्वीकार कराया जा सकता है, जो उसके लिए उपयोगी और आवश्यक हैं। साथ ही जिन्हें चरितार्थ होने पर अपना आदर्शवादी दृष्टिकोण भी पूरा होता है। इसी संबंध में एक ऐसी नवविवाहिता का दृष्टांत रीडर्स डाइजेस्ट पत्रिका में छपा है, जिसके पति एवं श्वसुर दोनों ही अफसरी भिजाज वाले थे, जो प्रायः हुकुम चलाते थे। भोली-भाली बेचारी पली उस पर कभी भी अपनी खीझ भरी प्रतिक्रिया व्यक्त न करती किंतु जब कभी उसके पति अथवा श्वसुर घर के छोटे-मोटे कामों को पूरा करके उसका भार बँटाने जैसा कोई नेक काम करते, तो पली अपनी प्रसन्नता व्यक्त किए बिना और उन्हें सम्मान दिए बिना न रहती। इस तरह से उसने उन दोनों को अपने आदर्शों के अनुरूप मोड़ने में सफलता पाई।

प्रशंसा प्रोत्साहन के माध्यम से आगे बढ़ाना, ऊँचे उछालना जितना सरल है, उतना और किसी प्रकार नहीं। प्रशंसा के उपरांत यह परामर्श भी दिया जा सकता है कि गेहूँ में घुन की भाँति कुछ धिनौनी आदतों को वह किस प्रकार त्यागकर अधिक प्रतिभा संपन्न, सज्जन, देवतुल्य बन सकता है। यदि इन्हीं दुर्गुणों के प्रति आंगुल्यानिर्देश छिद्रान्वेषी ढंग से पेश किया

जाता, तो उससे चिढ़कर व्यक्ति में दुर्भावनाएँ और गहरी जड़ जमा पाने का अवसर पा जाती हैं।

सकारात्मक प्रोत्साहन द्वारा व्यक्ति के वांछित आचरण में सुधार तभी आता है, जब वह कार्यावधि में ही दी जाए। उदाहरणार्थ बच्चा जब साइकिल सीख रहा है, उस अवधि में उसे बीच-बीच में प्रोत्साहित करते जाना ठीक है, किंतु जब वह साइकिल चलाना सीख गया है, तब भी यदि उसे शाबास ठीक कहा जाए, तो वह पागलपन सरीखा सिद्ध होगा। सीखी गई बात को बरकरार बनाए रखने के लिए यदाकदा प्रोत्साहन दिया जा सकता है।

प्रशंसा—प्रोत्साहन एक ऐसा सुधारात्मक आयुध है, जिसकी वजह से मनुष्य ही नहीं पशु-पक्षी जैसे स्वच्छंद प्राणियों को भी सुगढ़ बनाकर उनसे काम लिया जा सकता है। न्यूयार्क शहर के वौन्क्स चिड़ियाघर में वार्षिक स्वच्छता अभियान के अंतर्गत एक गोरिल्ले को पिंजड़े से बाहर निकालने की कोशिशें इसलिए चल रही थीं, ताकि पिंजड़ा भीतर से भलीभाँति साफ किया जा सके, किंतु ऐसा लग रहा था कि गोरिल्ले ने बाहर न निकलने की ठान ली थी। केले दिए जाने पर वह खाकर तुरंत भीतर घुस जाता। विवश होकर मुख्य प्रशिक्षक को बुलाया गया, उन्होंने समाधान यह सुझाया कि जब गोरिल्ला दरवाजे में बैठा हो, उसकी उपेक्षा की जाए, पर जब वह स्वयं बाहर आए, तो उसे भोजन देकर प्रोत्साहित किया जाए। प्रोत्साहन तो तभी दिया जाना चाहिए जब वांछनीय कार्य हो रहा है। ऐसा ही किया गया व वांछित प्रयोजन पूरा हुआ। वस्तुतः अभीष्ट कार्य की संभावना में पहले से प्रोत्साहन देना प्रकारांतर से धूंस देने के समान है। गोरिल्ले के इस दृष्टांत में उसे केले दिखाना उस आचरण का प्रोत्साहन नहीं है, जो अभी शुरू ही नहीं हुआ।

समय से पूर्व दिया गया प्रोत्साहन कारगर नहीं होता। इसमें कभी-कभार आगे असफल होने वाले कार्यों को भी हम प्रोत्साहित करने की भूल अनजान में कर जाते हैं।

प्रोत्साहन कोई भी चाहे वह सकारात्मक प्रशंसा वाला हो या निषेधात्मक पिटाई—नाराजगी वाला हो, समय से दिया जाए। कार्यविधि समाप्त होते—होते प्रोत्साहन दे देना चाहिए। बाद का दिया गया प्रोत्साहन निष्प्रभावी ही नहीं समस्यात्मक बन जाता है। उदाहरणार्थ यदि किसी कलाकार से कहें कि कल वाला तो आपका अभिनय बड़ा ही बेजोड़ था। इस प्रोत्साहन का उलटा अर्थ वह यह भी मान सकता है कि कल वाला उत्तम था और आज का निकृष्ट। जबकि कहने वाले का यह अभिप्राय नहीं था, वांछित परिणाम आते ही तुरंत ही हलकी डाँट—फटकार बच्चों पर अंकुश का काम करती है। बाद में डाँटते रहना निष्प्रभावी होकर मात्र शोर—शराबा ही उनकी निगाहों में रह जाता है।

प्रोत्साहन परिवर्तनशील व सृजनात्मक होने चाहिए। एक सरीखे प्रोत्साहन अपना महत्व गँवा बैठते हैं, इसकी परख कारेन प्रायर ने डालिफनों पर की है। उनका कथन है कि यदि डालिफन की हर उछाल पर उसे मछली देकर प्रोत्साहित किया जाए, तो वह यंत्रवत् हो जाती है। मछली खिलाना बंद तो कुदोन भी ठप्प। इसकी जगह प्रोत्साहन में भी परिवर्तनशील कार्यक्रम अपनाए जाने पर डालिफन वांछित आचरण करेगी।

अंतरात्मा अपनी गरिमा भूलती नहीं। वह येन—केन—प्रकारेण स्नेह सम्मान पाने के लिए हाथ—पाँव पीटती रहती है। व्यक्ति में सौंदर्य सज्जा से लेकर ठाट—बाट रोपने और सस्ते प्रदर्शनों से या उपहार देकर लोगों को इसके लिए उकसाती रहती है। यह ललक—लिप्सा मानवेतर प्राणियों में भी पाई जाती है। बी. एफ. स्किनर मनोविद् ठहरे, उन्होंने देखा कि एक लड़की चाहती थी कि उसका कुत्ता साथ—साथ घूमे, पर वह दूर भाग जाता और बुलाने पर भी न आता। स्किनर ने कुत्ते की तारीफ बाली योजना बताई। जब भी कुत्ता बिना बुलाए उसके पास आ जाता, वह उसकी तारीफों का पुल बाँध देती, उसे खिलाती, दुलारती तथा बच्चों सरीखी बातें करती, अब वही कुत्ता एक आवाज पर आने लगा।

कारेन फ्रायर ने जब यह देखा कि घर में बच्चों पर चीखना—चिल्लाना बैंसर हो रहा था—उन्होंने सकारात्मक प्रोत्साहन अपनाना आरंभ कर दिया। भोजन कर लेने के बाद ज्यों ही बच्चे बैरतन माँजने, हाथ बँटाने आगे बढ़ते तो उनकी माँ उन्हें गले लगा कर प्रशंसा के दो—चार शब्द कहकर प्रोत्साहित करने लगीं। जब उनके अच्छे काम प्रशंसित होने लगे, तो उनकी पुनरावृत्ति होते रहने से घर का वातावरण शनैः—शनैः सुख—शांतिमय होने लगा। निस्संदेह प्रशंसा वह सीढ़ी है, जिसके सहारे ऊपर उठाना, आगे बढ़ाना सरल होता है। प्रशंसा चाहे दूसरा करे या स्वयं कर ली जाए, हर दशा में उत्साहवर्द्धक सिद्ध हो सकती है।

जीवन में हम अपने आप से बड़ी—बड़ी आशाएँ रखते हैं। जब वे पूरी होने को हों, तब हम उन पर अपने को प्रोत्साहित न करें, ऐसे अवसर प्रायः कम ही आया करते हैं। अस्तु हम अपने को प्रोत्साहित करना भूल जाते हैं। कारेन फ्रायर के शब्दों में—“मैं समझती हूँ कि हमारी चिंता और उदासी की एक वजह प्रोत्साहन से वंचित रहना भी है।” उनकी राय में, व्यक्ति एक घंटे कामकाज बंद करके, दोस्तों के साथ गप्प लगाकर, आत्मानुमोदन से अपने आप को बड़े अच्छे ढंग से प्रोत्साहन दे सकता है। इस संदर्भ में अभिनेत्री रुथ गोर्डन के सुझाव हैं—“कलाकार की प्रशंसा होनी ही चाहिए। अगर काफी दिनों तक मेरी प्रशंसा न हो, तो मैं स्वयं अपने को बधाई देती हूँ। अपनी तारीफ आप करना दूसरों के मुँह से तारीफ सुनने जैसा ही होता है। कम से कम मैं इतना तो जानती ही हूँ कि यह तारीफ एकदम सही है।”

अपने आप को जानने की, अपने बारे में सोचने—समझने की उपेक्षा लोग—बाग किया करते हैं। व्यक्ति कितना ही व्यस्त क्यों न रहे, उसे इस निमित्त समय निकालना ही पड़ेगा। निद्रा में निमग्न होने के पहले अपने दिन भर के कार्यों का लेखा—जौखा उसे लेना चाहिए। जो भी स्तुत्य कृत्य, वचन या व्यवहार नेकी के जान पड़ें, उस हेतु उसे अपनी प्रशंसा—प्रोत्साहन स्वयं ही

कर देनी चाहिए। दुर्व्यवहारों पर स्वयं को लानत दिया जाए और उससे बचे रहने का परामर्श भी दिया जाता रहे।
गुण ग्राहकता भी सीखिए :

सभी चाहते हैं कि हमारे गुणों को दूसरे भी परखें, सम्मान करें। प्रशंसा के द्वारा मानव हृदय जितना आकर्षित और आंदोलित होता है, उतना और किसी प्रकार नहीं होता। प्रशंसा—प्रोत्साहन का जादू सभी पर प्रभाव डालता है। वानर सीता को खोजने गए, तो समुद्र तट पर जा सभी हिम्मत हार बैठे, तब जाम्बवंत जी ने हनुमान को प्रोत्साहित किया, उनके गुणों की प्रशंसा की व स्मरण दिलाया। कुछ क्षण पहले तक असमर्थों की पंक्ति में बैठे हनुमान उठ खड़े हुए और समुद्र पार करने का असंभव काम कर बैठे। उदंडंड छोकरे शिवाजी को प्रोत्साहित कर समर्थ गुरु रामदास ने हिंदू धर्म की लाज रखने वाला बनाया। इतिहास में चमकने वाले अनेक उज्ज्वल रत्नों की उन्नति का श्रेय ऐसे लोगों को है, जिन्होंने उनके गुणों को परखकर उन्हें बढ़ावा दिया और मानव से महामानव बनाया। नरेंद्र जैसे उद्धृत किशोर को परखकर श्री रामकृष्ण परमहंस ने उसे विश्वविद्यात विवेकानंद बना दिया।

गुण ग्राहक व्यक्ति ही औरों में निहित सम्प्रवृत्तियों को पुष्ट कर पाते हैं। वस्तुतः गुण या दोष देखना अपने दृष्टिकोण पर ही निर्भर है। दूसरों की विकृति देखते फिरना अपनी आंतरिक कुरुपता का ही दर्शन है। मनुष्य का जैसा दृष्टिकोण होता है, उसे यह विश्व वैसा ही दीखने लगता है। हरा चश्मा चढ़ा लेने पर चारों ओर हरा दृश्य, लाल चश्मा चढ़ा लेने पर चतुर्दिक लाल ही लाल दिखलाई पड़ता है। गुण—ग्राहक व्यक्ति सभी जगह से गुण खोजकर उनका उपयोग कर लेना जानता है। बढ़ई जब किसी पेड़ को देखता है, तो इसी दृष्टि से कि इसमें से किस काम का समान क्या—क्या बनेगा?

आचार्य द्रोण ने शिष्य दुर्योधन को आसपास के गाँवों में जाकर वहाँ के गुण संपन्न लोगों की जानकारी प्राप्त करने के लिए भेजा, लौटने पर दुर्योधन ने कहा—‘कहीं एक भी गुण

संपन्न व्यक्ति नहीं है, सभी दोष-दुर्गुणों का ही बोलवाला है, गुणों का तो वे प्रदर्शन मात्र करते हैं।"

जब युधिष्ठिर को इसी कार्य के लिए भेजा गया, तो उनने लौटकर सभी व्यक्तियों में गुण-गरिमा होने की बात कही। दोष-विकृतियाँ उन्हें अनुल्लेखनीय जान पड़ीं। ये भिन्न निष्कर्ष दुर्योधन की दोष-दर्शनवृत्ति तथा युधिष्ठिर की गुण-ग्राहकवृत्ति की भिन्नता के कारण ही निकले।

गुण-ग्राहकता का अर्थ दुष्ट-दुरात्माओं में भी श्रेष्ठताएँ आरोपित कर देना नहीं। अन्याय-अनीति का विरोध तो उचित है, धर्म है, पर ऐसे अत्यंत उग्र-कूर कर्माओं का जिनके सुधरने की संभावना नहीं के बराबर रहती है, विरोध करने का साहस तो विशिष्ट मनस्वी, तपस्वी ही जुटा पाते हैं।

गुण-ग्राहक व्यक्तियों की सच्ची प्रशंसा और प्रोत्साहन से मुरझाए मन भी ऐसे ही हरे हो जाते हैं, जैसे मुरझाकर सूखने को हो रहे पौधे जल से सिंचित होते ही दूसरे ढंग के हो जाते हैं। उनकी गतिविधि ही बदल जाती है, कुम्हलाए पत्ते सतेज दिखाई पड़ने लगते हैं। प्रशंसा का जल भी सूखे अंतःकरणों में आशा और उत्साह का संचार करता है।

प्रशंसा का अर्थ झूठी चापलूसी करके किसी का अनुचित अहंकार उभारना नहीं, उससे भी तात्कालिक स्वार्थ सिद्ध होते हैं, किंतु अंततः चापलूसी से मन में ग्लानि ही उत्पन्न होती है। फिर जिसकी झूठी चापलूसी की जाती है, उसका भी अनिष्ट ही होता है। उभरा हुआ अहंकार उसकी विवेक बुद्धि को कुंठित कर देता है और उससे अनुकरणीय, अनुचित कर्म कराता है। परिणामस्वरूप ठोकर लगती है, ठोकर लगने पर यदि उसकी आँखें खुल गयीं, तो फिर उसे वह चापलूस-खुशामदी व्यक्ति अपना शत्रु ही दीखने लगता है।

गुण-ग्राहकता चाटुकारिता से सर्वथा भिन्न वस्तु है। चाटुकारिकता में प्रवंचना और क्षुद्रता का भाव होता है। उसमें या तो हीनता की भावना काम करती है या ठगी की। जबकि गुण-ग्राहकता के पीछे उदार मानवीयता की प्रेरणा होती है।

प्रशंसा—प्रोत्साहन द्वारा अनेक व्यक्तियों को ऊँचा उठाने, आगे बढ़ाने में सहायक बनने का सत्प्रयोजन पूरा किया जा सकता है। फिर भी यह हो सकता है कि कोई क्रियाशील व्यक्ति आपकी प्रशंसा—प्रोत्साहन पाकर अभावों—प्रतिकूलताओं के बीच भी आगे बढ़ने का साहस नए सिरे से जुटा ले और उन्नति के प्रकाशपूर्ण पथ पर चलता हुआ एक दिन ऊँची छोटी पर जा पहुँचे। इस महान् कर्म—साधना में आप भी अनायास ही पुण्य के भागीदार बन बैठेंगे।

अनेक ऐसे लोग जो व्यक्तिगत रूप से उन्नतिशील होते हैं और जिनमें योग्यता के अंकुर विद्यमान होते हैं। समीपस्थ लोगों की झिड़क, तिरस्कार, उपेक्षा के कारण दब जाते हैं, उनका मन मर जाता है और वे धूल में सने पड़े रहना, तैसे—तैसे जिंदगी की गाढ़ी घसीटते रहना ही अपनी नियति मान बैठते हैं। उनके गुणों की यदि परख की जाए, प्रशंसा—प्रोत्साहन के दो शब्द उनके कानों में डालने की कंजूसी न की जाए, तो इन्हीं थोड़े शब्दों का रस ही उनके अंतःकरण को ऊँचे स्तर की तृप्ति देता है, जिससे उनकी सारी थकान मिट जाती है, स्फूर्ति और उमंग उमड़ पड़ती है। प्यासे पथिकों की तृष्णा दूर करने के लिए प्याऊ लगवाने, कुआँ—बावड़ी बनवाने, निराश्रितों को सिर छिपाने के लिए धर्मशालाएँ बनवाने, भूखों को भोजन देने की सदाव्रत खुलवाने, निर्धन रोगियों के लिए परमार्थ औषधालय खुलवाने जैसे उदारतापूर्ण और प्रेमपूर्ण पुण्य कार्यों से गुणों के प्रोत्साहन का धर्म—कार्य कम नहीं, अधिक ही प्रभाव—परिणाम उत्पन्न करने वाला है। यदि आप दूसरों के मुरझाए हृदयों को सींचने का, कानों की राह आत्माओं को अमृत पिलाने का धर्म—कार्य करते हैं, तो परोपकारी मेघों जैसे ही श्रेय के भागी हैं। पुण्य कर्म से अनेकों के अंतःकरण की चिरतृष्णा तृप्त होती है, उन्नति के अवरुद्ध खोत खुल जाते हैं, अविकसित सद्प्रवृत्तियाँ प्रस्फुटित हो जाती हैं, छिपी योग्यताएँ जाग्रत हो जाती हैं और निराशा के अंधकार में उन्हें पुनः आशा का दीपक जगमगाता दृष्टिगोचर होने लगता है। सच्ची गुण—ग्राहकता और प्रोत्साहन की मधुर

वाणी से सींचने पर असंख्य अतृप्ति-कलांत हृदय हरे-भरे, स्वच्छ-उत्फुल्ल हो सकते हैं। उनके सद्गुण वर्षाकाल में वनस्पतियों की तरह तीव्र गति से बढ़ने, फलने-फूलने लग सकते हैं।

सम्मान दें, बदले में श्रेय पाएँ :

यह भली-भाँति समझ लेना चाहिए कि हर मनुष्य के अंतराल में एक चेतन चिनगारी ऐसी है, जो अपना सम्मान चाहती है। गौरवास्पद बनने के लिए आकुल-व्याकुल रहती है। इस तड़पन तो तृप्ति करने के लिए कौन उपाय उपयुक्त हो सकता है? प्रायः इसी निर्णय में चूक हो जाती है। अदूरदर्शिता चुटकी बजाते सब कुछ पाने के लिए बालकों की तरह खिलौनों के लिए मचलती रहती है। इस आतुरता में वह प्रपञ्च-पाखंड का अनीति-अपराध का मार्ग अपनाती है। गुंडागर्दी की आतंकवादी गतिविधियाँ अथवा आत्म-श्लाघा की प्रवंचना छोड़कर सिंह की चमड़ी ओढ़ने वाले गधे का उदाहरण बनते हैं, पर यह छद्म टिकता कहाँ है? चापलूसों द्वारा अपनाई गई झूठी वाहवाही के अतिरिक्त श्रद्धा भरा सम्मान उन्हें मिल कब पाता है।

इतने पर भी अंतरात्मा अपनी गरिमा को भूलती नहीं और येनकेन प्रकारेण स्नेह-सम्मान पाने के लिए हाथ-पैर पीटती ही रहती है। सौंदर्य सज्जा से लेकर ठाठ-बाट रोपने, और सस्ते प्रदर्शनों से, छुटपुट उपहारों से लोगों को इसके लिए उकसाती रहती है कि उन्हें प्रशंसा प्रदान करे, भले ही वह उथली-अवास्तविक या अनावश्यक ही क्यों न हो? अधिकांश लोगों में यह प्रवृत्ति न्यूनाधिक मात्रा में पाई जाती है। उन तत्त्वदर्शी और विवेकवान लोगों की बात दूसरी है, जो हंसों की तरह मोती ही चुगते हैं, कीड़े खाने की नौबत आने पर भूखों मर जाते हैं। चापलूसी-वाहवाही किसी प्रकार बटोरने की अपेक्षा वे यह उचित समझते हैं कि ऐसा कर्तव्य अपनाया जाए, जिसमें यह स्वाभाविक गुण भरा हो, जिसे सुनने-देखने और जाँचने पर हर व्यक्ति प्रभावित होता रहे और वाणी से न सही, अंतःश्रद्धा के स्तर पर भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे।

कर्तव्य के बदले प्रतिष्ठा प्राप्त करना ही वह उपचार है, जिसके आधार पर तृप्ति देने वाली प्रतिष्ठा उपलब्ध होती है, प्रयत्न उसी के लिए होना चाहिए।

इस भावना एवं मनोविज्ञान को समझने वाले दूसरों को अनुकूल एवं अनुरूप बनाने के लिए अपनी वाणी को इस कला-कौशल से अभ्यस्त करते हैं कि मधुर वचन बोलें और दूसरों को अपना मित्र-सहयोगी बनाएँ। मधुर वाणी का तात्पर्य कंठ का मिठास अथवा भाषा में शब्दों का लोच समझा जाता है। ऐसा तो दरबारी किस्म के लोग दूसरे धूर्त्वा की संगति में सहज ही सीख लेते हैं। ठगों का तो यह परंपरागत कला-कौशल है, वे मोर जैसे मधुर वचन बोलते हैं और जो हाथ लगता है, उसी को उदरस्थ कर लेते हैं, भले ही वह साँप-सपोला जैसा ही कुछ क्यों न हो। तत्काल इस मायाचार को भले ही न समझा जा सके, पर कुछ ही समय में वास्तविकता खुल जाती है और स्पष्ट हो जाता है कि ठगने के लिए ही वाक्‌जाल बुना गया था। उसमें फँसा लेने के उपरांत व्यवहार में भारी अंतर आ जाता है। वंशी बजाकर बहेलिया मृग को मोहते हैं और फिर पकड़कर उसकी चमड़ी उधेड़ते हैं। ऐसी मिठास को दूर से नमस्कार ही करना चाहिए, जो चासनी में मक्खी फँसाकर उसे तड़पते हुए मरने के लिए बाधित करे, ऐसे मिठास से तो गिलोय की वह कटुता भली, जो बुखार उतारे और खून साफ करे। सस्ती वाहवाही के प्रलोभन से विज्ञजनों को बचना चाहिए। कहना चाहिए कि यह खतरे भरा खेल है, इसे चिड़ियाँ पकड़ने वाले बहेलिए और मछली मारने वाले वंशी में आटे की गोली लगाकर आए दिन अपनाते और नासमझों के प्राण हरण करते हैं। हितकारी, कल्याणकारी परामर्श अपने को प्रिय लगे, यह आवश्यक नहीं, उसमें अदरक जैसा तीखापन भी हो सकता है। जो भी भला-बुरा कानों को सुनना पड़ता है, उसे ध्यानपूर्वक ही नहीं विवेकपूर्ण भी सुना जाना चाहिए और यह खोजना चाहिए कि मधुरता या कटुता का वाणी में समावेश किस उद्देश्य के लिए हुआ है ? गहराई में उत्तरकर तथ्य तक पहुँचने वाले ही विज्ञजन एवं

मनीषी कहलाते हैं, वे ही यथार्थता के संपर्क का लाभ उठाते हैं।

यहाँ एक बात और भी ध्यान रखने की है कि वाणी की मधुरता का उपयोग संपर्क में आने वाले की प्रसन्नता वृद्धि के साथ-साथ हित कामना के लिए भी किया जा सकता है। किसी को सत्परामर्श देने के लिए भी यह आवश्यक है कि पहले उसकी अनुकूलता अर्जित की जाए। प्रतिकूलता का मनोमालिन्य बन जाने पर तो हितकारी परामर्श स्वीकारने एवं सहयोग लेने में भी आनाकानी होती देखी गई है।

व्यक्ति को अनुकूल बनाने के लिए सबसे सरल और प्रभावोत्पादक उपाय है कि उसके गुणों को तलाश करके वर्णन प्रकाशन किया जाए। इस प्रकार की कथनी प्रायः मित्रवर्ग में ही होती है। स्वजन शुभेच्छु ही प्रशंसा करते हैं, जिनके मन में कटुता एवं द्वेष भावना होती है, वे प्रायः निंदा करते ही देखे गए हैं। मोटी बुद्धि अपने पराए का, मित्र-शत्रु का अनुमान प्रस्तुत की गई प्रशंसा या निंदा के आधार पर ही लगा पाते हैं।

संसार में सर्वथा गुण विहीन व्यक्ति कोई भी नहीं। तलाश करने पर बुरा दीखने वाले व्यक्ति में भी कुछ न कुछ गुण मिल सकते हैं। बिना झूठ बोले भी हर व्यक्ति में जो प्रत्यक्ष-परोक्ष गुण दीख पड़े, पिछले जीवन में उससे जो सत्कर्म बन पड़े हों, उनकी चर्चा कर देना अपनी सद्भावना का प्रकटीकरण है, जिससे व्यक्ति अनुकूल भी बनता है। नरम पड़ने पर अपनी ओर ढुकने पर उन परामर्शों को भी दिया और स्वीकार कराया जा सकता है, जो उसके लिए उपयोगी एवं आवश्यक हैं। साथ ही जिसके चरितार्थ होने पर अपना आदर्शवादी उद्देश्य भी पूरा होता है। यह आत्मा की भूख की आंशिक पूर्ति भी है। प्रशंसा के माध्यम से प्रोत्साहन मार्गदर्शन के आधार पर किसी को आगे बढ़ाना, ऊँचा उठाना जितना सरल है, उतना और किसी प्रकार नहीं। प्रशंसा के उपरांत यह परामर्श भी दिया जा सकता है कि उसमें जो थोड़े-बहुत दोष-दुर्गुण हैं, उन्हें किस प्रकार छोड़ें, अधिक प्रतिभवान् बनें। यह कार्य उस दशा में नहीं हो सकता, जिसमें निंदा को प्राथमिकता दी जाए, उसे बढ़ा-

चढ़ाकर कटु शब्दों में कहा जाए। इससे चिढ़ एवं दुर्भावना पैदा होती है। निंदा से खीजा हुआ मनुष्य उस कथन को अपना अपमान मानता है और जो अनुचित करता रहा है, उसी को करते रहने में अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लेता है। इस प्रकार निंदा उस उद्देश्य की पूर्ति नहीं करती, जिसका प्रयोजन बुराई को छुड़ा लेना था।

एक चूड़ी बेचने वाला घोड़ी पर चुड़ियाँ लादकर गाँवों में बेचने जा रहा था। समय-समय पर वह घोड़ी को रास्ते में बेटी-बहन, देवी-मुन्नी आदि शब्दों से संबोधित करता जाता है। रास्ते में मिले व्यक्तियों ने घोड़ी को इतना मान देने का कारण पूछा, तो उसने कहा—‘मैं अपनी वाणी को परमार्जित कर रहा हूँ, ताकि जिन महिलाओं के बीच मुझे व्यापार करना है, उनसे मीठा बोलकर अधिक बेचकर, अधिक लाभ प्राप्त कर सकूँ।’ यह प्रवृत्ति हम में से प्रत्येक को पैदा करनी चाहिए। प्रशंसा करने का अवसर जब भी मिले, उसे व्यक्त करने का अवसर चूकना नहीं चाहिए। इससे अपनी प्रतिष्ठा बढ़ती है, श्रेय मिलता है एवं अतिरिक्त इस आधार पर उनका मार्गदर्शन एवं दोष-निराकरण भी संभव हो सकता है।

अच्छाइयों से रहित इस सृष्टि में कोई भी प्राणी नहीं। दुर्गुणों को तलाश करने की दृष्टि हो, तो हर किसी में दोष खोजे जा सकते हैं, किंतु यदि दृष्टिकोण गुण पारखी हो, तो गए-गुजरे व्यक्ति में भी न्यूनाधिक कुछ न कुछ अच्छाइयाँ मिल ही जाती हैं। जो कुछ ऐसा मिले उसकी चर्चा उत्साहवर्द्धक शब्दों में कर दी जाए, तो सुनने वालों को संतोष होगा, जिसकी उसे इच्छा आकंक्षा थी। इस प्रकारांतर से उसे मनचाहा उपहार उपलब्ध हो जाता है। अपने में भी कई सद्गुण हैं, इसका आभास होने से उत्साहित व्यक्ति का मन उस ओर ढुलता है और उन अच्छाइयों को अधिक मात्रा में बढ़ाने का प्रयत्न करता है। इस सुधार योजना को बालकों से लेकर बड़ों तक में समान रूप से प्रयुक्त किया जा सकता है और उसका सत्परिणाम सत्प्रवृत्ति संवर्द्धन के रूप में तत्काल देखा जा सकता है।

आलोचनाओं से डरिए मत

जीवन पथ के साहसी पथिक के मार्ग में बहुत बाधाएँ आती हैं। सुधारवादी को तरह-तरह की आलोचनाओं का शिकार होना पड़ता है। जिनका संकल्प दृढ़ है, वे आलोचनाओं की परवाह नहीं करते और अपने पथ पर आगे बढ़ते जाते हैं, किंतु कमज़ोर मन वाले आलोचनाओं से हार खाकर घुटने टेक देते हैं।

अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि कीट्स ने तेर्झ स वर्ष की उम्र में 'इनडिमिआन' नामक एक काव्य पुस्तक लिखी। पुस्तक साहित्यिक दृष्टि से उपयोगी थी। सुमधुर भाषा में गीतों को छंद बद्ध किया गया था, किंतु कुछ पाठकों ने उस पुस्तक की तीखी आलोचना की, जिससे कीट्स को बड़ी निराशा हुई। उसका साहस टूट गया। उसका जीवन नैराश्यपूर्ण हो गया। घुल-घुलकर सत्ताईस वर्ष की आयु में ही उसका प्राणांत हो गया। यह कीट्स की मानसिक कमज़ोरी थी।

अंग्रेजी साहित्य के ही एक दूसरे कवि टॉमस चैटरसन ने अट्ठारह वर्ष की अल्पायु में ही कविता लिखना प्रारंभ किया। वे बड़े प्रतिभाशाली और महत्त्वाकांक्षी थे, किंतु उनकी अब तक बड़ी आलोचना हुई। मरणोपरांत उसकी कृति को खूब सम्मान मिला। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने धोबी के मुँह से सीताजी की निंदा सुनकर उनको वनवास भेज दिया। वन में सीता माता को अपार कष्ट झेलना पड़ा। श्रीराम का आलोचना से प्रभावित होना अभी भी चर्चा का प्रसंग है। १९२९ में अमेरिका का एक तीस वर्ष का युवक विश्वविद्यालय का अध्यक्ष चुना गया। वयोवृद्ध विद्वानों ने उस युवक की शिकायत की। कई व्यक्तियों ने उस युवक के पिता के सामने उसकी आलोचना की, पर पिता को अपने पुत्र की योग्यता में विश्वास था। आलोचना दूध के उफान के समान दब गई और युवक ने बहुत अच्छा कार्य करके

दिखाया। उसने उपहास की तनिक भी परवाह नहीं की।

स्वामी दयानंद आर्य समाज के संस्थापक थे। उन्होंने अपने विचारों का दृढ़ता से प्रचार किया। मूर्ति पूजा का विरोध करने के फलस्वरूप उनको घोर विरोध का सामना करना पड़ा। एक दिन उनके विरोधियों ने उनकी प्रतिमा बनाई और उसमें कालिख पोत दी। इसके बाद सभी मिलकर उस प्रतिमा को गधे पर बिठालकर शहर में घुमाने लगे। स्वामी जी का ध्यान जब इस ओर आकृष्ट किया गया, तो उन्होंने उत्तर दिया कि वह तो नकली दयानंद है, जिसे शहर में घुमाया जा रहा है। असली दयानंद तो तुम लोगों के बीच है। असलियत को अपनाना चाहिए।

एक सज्जन महर्षि दयानंद को नित्य असंख्य गालियाँ सुनाया करते थे। महर्षि पर उसका कोई असर नहीं होता था। एक समय वह सज्जन बीमार पड़ गए। स्वामीजी को इसका पता चला। उन्होंने अपने अनुयायियों से उक्त सज्जन की रोग मुक्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना करने को कहा। गाली देने वाले सज्जन को जब यह प्रसंग मालूम हुआ, तो उसे बड़ी आत्म-ग्लानि हुई और वह स्वामी जी का प्रशंसक बन गया। स्वामी जी झूठी निंदा पर ध्यान नहीं देते थे।

किसी दुष्ट ने एक समय सुकरात की पीठ पर लात मारी और वे गिरते-गिरते बचे। लोगों को यह बहुत बुरा लगा। उन्होंने बदला लेना चाहा, पर सुकरात ने उन लोगों को रोका और कहा कि लात मारने वाला मूर्ख गधा था। अतः उसे हमारे समझदार होते हुए भी क्यों लात मारी जाए।

एक दुष्ट महात्मा बुद्ध को कटु वचन और गालियाँ सुनाया करता था, पर तथागत इसका कुछ भी उत्तर नहीं देते थे। उनके शिष्यों ने जब भगवान बुद्ध से इस संबंध में पूछा, तो उन्होंने जबाव दिया कि अगर किसी व्यक्ति की भेंट कोई स्वीकार नहीं करता, तो भेंट पुनः उस व्यक्ति को वापस मिल जाती है। यह सुनकर सभी चुप हो गए। टॉलस्टाय अपने जीवन के पूर्वार्द्ध में बड़े सामंती विचार के थे। बाद में उन्होंने

जारों के विरुद्ध आंदोलन किया। वे किसानों के हिमायती बने और कटु आलोचनाओं के बावजूद अपने कार्य में अडिग रहे।

जो व्यक्ति पुरानी कुरीतियों को मिटाकर नए समाज की स्थापना का संकल्प लेकर आगे बढ़ता है, उसे अनेक विरोधियों का सामना करना पड़ता है। वे सत्कर्मों में बाधा डालते हैं। चतुरता और पराक्रम से उन पर काबू पाना चाहिए। नीच व्यक्ति के उपहास में कोई तथ्य नहीं रहता, तमाम झूठी आलोचनाओं का महात्मा ईसा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। दुष्ट लोगों ने उन्हें सूली पर चढ़ा दिया, पर सूली पर चढ़ कर भी उन्होंने परमेश्वर से यही प्रार्थना की कि वे उन अज्ञानियों के अपराध को क्षमा कर दें। दृढ़ व्रती को पृथ्वी के समान सहिष्णु बनना चाहिए। धरती माता उन लोगों को भी आश्रय देती है, जो उसे खोदते हैं। सत्पुरुषों को दुष्टों की गाली सहनकर उन्हें प्यार देना चाहिए। सहिष्णु की अंत में विजय होती है।

गुरु नानक ने रुद्धियों पर कड़ा प्रहार किया। उनका कहना था कि हिंदू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई सभी एक ही ईश्वर की संतान हैं। मनुष्यों ने स्वार्थवश भेदभाव और पाखंड का सृजन किया है, किंतु परंपरावादी और अंधविश्वासी लोगों ने डटकर उनका विरोध किया। गुरु नानक धैर्यपूर्वक अपना धर्म प्रचार करते गए और देखते—देखते सिक्ख धर्म ने जड़ पकड़ ली।

एक दिन रेलगाड़ी के प्रथम श्रेणी के डिब्बे में बैठकर स्वामी विवेकानंद कहीं जा रहे थे। उसी डिब्बे में दो विदेशी सज्जन भी बैठे थे। स्वामी जी को गेरुए वस्त्रों में देखकर वे दोनों सज्जन भारतीय साधुओं की आलोचना करने लगे। न जाने उन्होंने भारतीय साधुओं को कितना बुरा—भला कहा वे अंग्रेजी में वार्तालाप कर रहे थे। उनको विश्वास था कि वह गेरुआ वस्त्रधारी साधु भला अंग्रेजी भाषा को क्या समझे ? स्वामी जी शांत भाव से उन सज्जनों की बात सुन रहे थे। थोड़ी देर बाद एक स्टेशन आया, जहाँ पर हजारों लोग स्वामी जी की अगवानी में आए, जिनमें उच्चकोटि के विद्वान् भी थे। स्वामी जी ने बढ़िया अंग्रेजी में उनके सामने भाषण दिया। इसे देखकर उन विदेशियों

की आँखें खुलीं और उन्होंने स्वामी जी से माफी माँगी। स्वामी जी ने उन्हें बताया कि उनके वार्तालाप से जो शिक्षाप्रद और ग्रहण करने योग्य था, उतना ही उन्होंने ग्रहण किया और शेष सब भुला दिया है।

एक दिन गाँधी जी को एक युवक ने पत्र लिखा, जिसमें गाँधी जी को बहुत गालियाँ दी गई थीं। गाँधी जी ने शांत भाव से पत्र को पढ़ा। दो-तीन पन्ने का वह पत्र था और उसमें से एक पिन को निकाल कर रख लिया और पत्र को फाड़कर रद्दी की टोकरी में डाल दिया। पत्र में व्यर्थ की बातें थीं। जिस पिन का उपयोग हो सकता था, उसे रख लिया और अनुपयोगी पदार्थ को फेंक दिया।

गाँधी जी हिंदू-मुस्लिम एकता के लिए अंत तक युद्ध करते रहे। उनकी इच्छाओं के विरुद्ध देश का विभाजन हुआ। सांप्रदायिक विष को नष्ट करने के लिए उन्होंने कुछ भी उठा नहीं रखा, फिर भी एक युवक ने उनकी हत्या कर दी। गाँधी जी हँसते-हँसते शहीद हो गए।

नृशंस सती प्रथा को मिटाने के लिए राजा राममोहन राय को लोगों का कोप भाजन बनना पड़ा, पर वे अपने उद्देश्य के प्रति अड़िग रहे।

महर्षि कर्वे ने विधवाओं की दशा देखकर उनके पुनर्विवाह का आंदोलन चलाया, वे स्वयं जवानी में ही विधुर हो गए थे। उन्होंने एक विधवा को पत्नी रूप में वरण किया और समाज के सामने अनुपम आदर्श उपस्थित किया। कर्वे दंपत्ति ने अपना अनाथ बालिकाश्रम की मंडली नामक संस्था प्रारंभ की। इसके लिए उन्हें बहुत गालियाँ सुननी पड़ीं, पर वे विचलित नहीं हुए।

हमें आलोचनाओं से डरना नहीं है। हम अपने प्रति सच्चे रहें और हिमालय की तरह अड़िग बनें।

हमारे सामने बहुत-सी उलझनें और गुत्थियाँ आती हैं। हम उनको स्वयं सुलझाएँ। नदी अपने मार्ग की बाधाओं से जूझकर समुद्र से मिलती है। अतः हमें भी बाधाओं से लड़ना है। सचाई के लिए संघर्षशील बनना है। हम अपने हृदयों में आशा की

ज्योति जलाकर अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए गतिमान रहें। किसी की आलोचना से हम अपने पथ से डिगें नहीं। अपनी आलोचना में संकोच न करें :

आलोचना या समीक्षा करना अच्छी बात है। इससे छिपे हुए दुर्गुण उभरकर ऊपर आते हैं। जब वे प्रकट होते हैं, तो निंदा होने लगती है, फिर छोड़ देने में ही खैर दिखाई देती है।

आलोचना करने का अभ्यास अपने आप से करना चाहिए। इससे अपने दुर्गुण सूझ पड़ते हैं और उन्हें दुहराने के प्रयत्न चल पड़ते हैं। स्वच्छता हो जाने पर निर्मल बना व्यक्ति प्रामाणिक और प्रशंसा का पात्र बनता है। उसे साहसी भी माना जाता है। जो अपने को धो सके, वह पराक्रमी।

अपनी बुराइयों को छिपाकर जो दूसरों की निंदा करता है, वह अपमान का भागी बनता है। समझा जाता है कि द्वेषवश बुराई की जा रही है। व्यक्ति इसमें अपना अपमान समझता है और चिढ़कर चुनौती देता है, कि देखें कोई क्या कर लेगा? हम तो ऐसी ही बुराइयाँ अपनाए रहेंगे, जिसे रोकना हो रोके।

इस प्रकार कलह बढ़ता है और साथ ही द्वेष भी। विग्रह खड़ा होता है और एक के बदले चार नई समस्याएँ खड़ी होती हैं।

अच्छा यह है कि जो कार्य हम दूसरों के लिए हितकर समझते हैं, उन्हें अपने लिए करें। बुराई से बचना, उसे त्यागना अच्छी बात है, तो वह प्रयोग अपने आप से क्यों न किया जाए। दूसरे की गलती पकड़ने में भ्रम या भूल भी हो सकती है, पर अपनी बातें तो अपने को विदित होती हैं। जो त्रुटियाँ सूझ पड़ें, उन्हें सुधारने का प्रयत्न करें। प्रयत्न चालू रहेंगे, तो यह निश्चित है कि एक-एक करके दुष्प्रवृत्तियों से छुटकारा मिल जाएगा।

जिसने अपने को सुधार लिया है, उसे दूसरे से कहने या सुधारने का अधिकार मिल जाता है। अपना निर्मल चरित्र ही इतना बलिष्ठ होता है कि उसके साथ दुर्गुणी टिक नहीं पाता। कम से कम अड़ने का दुस्साहस तो उसमें होता ही नहीं।

बुराई छोड़ने का, आलोचना का प्रयत्न अपने लिए भी करना चाहिए और दूसरों के लिए भी, किंतु यह कार्य एकांत में प्रेम भरे व्यवहार के साथ होना चाहिए। दुर्गुणों की हानियाँ और सद्गुणों की परिणतियाँ यदि गंभीरतापूर्वक समझाई जा सकें, तो दूसरा आदमी उसे अपना मानता है, हितैषी के प्रति दुर्भावना नहीं उठ सकती। लोग बदनामी से इतना डरते हैं, जितना बुराई से नहीं। बदनामी फैलाकर यदि आलोचना की गई है, तो वह अभीष्ट प्रयोजन सिद्ध न कर सकेगी।

साबुन स्वयं धिस जाता है, पर 'दूसरे के' कपड़े साफ करता है। अपने को विरोध सहना पड़े या बदले में आक्रमण होता हो, तो उसे सहना चाहिए, क्योंकि झंझट में केवल परामर्शदाता का ही अहित होता है, पर दुर्गुणों की ओर ध्यान न दिलाया जाए, उनकी परिणति से अवगत न कराया जाए, तो आदतें बिगड़ती ही जाएँगी और कुछ समय में इतनी परिपक्व हो जाएँगी कि छुड़ाएँ न छूटेंगी।

सच्चे मित्र की एक अच्छी पहचान यह है कि मित्र को बुराइयों से बचाता है, जो लद गई हैं, उन्हें छुड़ाता है। इसलिए आलोचना मित्रता का गुण है। उनमें शत्रुता का भाव नहीं है, पर शत्रुता वह तब बन जाती है, जब बदनामी उसके साथ जुड़ जाती है। हमें इस चतुरता से आलोचना करनी चाहिए कि बदनामी या विद्वेष बढ़ने की नौबत न आए।

वस्तुतः हर वस्तु या व्यक्ति के दो पक्ष हैं। एक भला दूसरा बुरा। एक काला दूसरा उजला। समय के भी दो पक्ष हैं—एक दिन, दूसरा रात। दोनों की स्थिति यों एक—दूसरे से भिन्न होती है, फिर भी दोनों को मिलाकर ही एक समग्रता बनती है।

मनुष्यों में गुण भी हैं और दोष भी। किसी में कोई तत्त्व अधिक होता है किसी में कोई। हर किसी में गुण—दोष दोनों ही होते हैं। मात्रा की दृष्टि से न्यूनाधिकता भले ही हो। सर्वथा निर्दोष कोई भी नहीं, न कोई ऐसा है, जिसे सर्वथा बुरा ही कहा जाए।

अच्छाइयों की प्रशंसा होती है और बुराइयों की निंदा। यह

अच्छा तरीका है। चर्चा से, वस्तुस्थिति से अनेकों अवगत होते हैं और जिसके संबंध में कहा गया है, उसको भी अपने संबंध में अधिक जानकारी मिलती है। आमतौर से लोग दूसरों की ही आलोचना, समीक्षा करते हैं। अपने संबंध में अनजान ही बने रहते हैं। अपनी बुराई बिरला ही देख पाता है। जो दीख भी पड़ती हैं, उनका मूल कारण दूसरों को समझाता है। भाग्य दोष, परिस्थिति दोष कहकर मन समझा लिया जाता है। अपने तो गुण दीखते हैं। इसलिए आत्मप्रशंसा करने की गर्वक्ति से भी कोई नहीं चूकता। आत्मश्लाघा भरे बखान ही होते रहते हैं। चापलूस भी अपनी गोट बिठाने के लिए मुँह सामने प्रशंसा ही करते हैं। पीठ पीछे भले ही निंदा करते हों। सामने की प्रशंसा से मनुष्य भ्रम में पड़ जाता है। अपनी गुणवत्ता पर फूला नहीं समाता। उस ठकुरसुहाती को सचाई मान बैठता है। इससे अहंकार की वृद्धि होती है और मिथ्या धारणा की जड़ें मजबूत होती हैं। इस विडंबना की आड़ में दोष छिप जाते हैं, उनका पता भी नहीं चलता। ऐसी दशा में सुधार का प्रयत्न बन ही नहीं पड़ता। जब दोषों को स्वयं देख सकने की क्षमता न हो, अन्य कोई बताए या सुलझाए नहीं, ऐसी दशा में आत्मसुधार कैसे हो? उसके बिना प्रगति का अवरुद्ध द्वार खुले कैसे? जिसे वस्तुस्थिति का ज्ञान ही नहीं, वह अवगुणों को सुधारने और सद्गुणों को अधिक बढ़ाने का प्रयत्न कैसे करे?

आलोचना आवश्यक है। इसे कोई निष्पक्ष, हितैषी, शुभचिंतक ही कर सकता है। सो भी तब, जब बुरा मान जाने का खतरा उठाने की हिम्मत हो। आमतौर से निष्पक्ष आलोचना कर सकने वाले निंदा करते हैं। असत्य लांछन भी लगाते हैं। बदनाम करके अपनी जलन शांत करते हैं। ईर्ष्या ऐसा करने के लिए प्रेरित करती है। इसे सुनकर रोष एवं द्वेष बढ़ता है। सुधार करने के स्थान पर चिढ़ाने के लिए वैसी बुराई करके दिखाने की हठवादिता भी अपनाता है। इससे बुरा व्यक्ति और भी बुरा हो जाता है। दूसरी ओर ऐसा भी होता है कि मिथ्या प्रशंसा से अपनी श्रेष्ठता पर फूलकर कुप्पा हो जाने और समय-कुसमय शेखी बघारते

रहने की लत पड़ जाती है। इससे वस्तुस्थिति जानने वाले उपहास उड़ाते हैं। ओछापन ताड़ लेते हैं। यह स्थिति निंदा के ही समतुल्य है।

सही आत्म समीक्षा कोई विचारशील ही कर सकते हैं अथवा कोई यथार्थवादी मित्र वस्तुस्थिति को समझने-समझाने का प्रयत्न करते हैं। ऐसे समीक्षक जिन्हें मिल जाएँ, उन्हें अपने को भाग्यशाली ही मानना चाहिए, क्योंकि इसी आधार पर सुधरने एवं प्रगति करने का अवसर मिलता है। इसमें बुरा मानने जैसी कोई बात नहीं है।

संतुलित दृष्टिकोण

ही सफलता का राजमार्ग

जीवनचर्या के संबंध में यदि संकुचित दृष्टिकोण अपनाया जाता रहे, तो स्वार्थ और परमार्थ का समन्वय साथ-साथ भली प्रकार चलता रह सकता है। कठिनाई तब पड़ती है, जब मनुष्य संकीर्ण स्वार्थपरता के शिकंजे में बुरी तरह कस जाता है। पेट-प्रजनन को ही सब कुछ मान लेता है। वासना, तृष्णा और अहंता की पूर्ति के अतिरिक्त और कुछ सूझता ही नहीं। लोभ, मोह और अहंकार के दलदल में पैर से सिर तक धूँस जाता है। यही वह मनःस्थिति है, जिसमें मनुष्य सर्वदा अपने को अभावग्रस्त अनुभव करता है, असंतुष्ट रहता है। नशेबाज को हर घड़ी खुमारी में ढूबे रहने की आवश्यकता प्रतीत होती है। इसी प्रकार लिप्सा-लालसाएँ भी मनुष्य को निरंतर स्वार्थ-सिद्धि में लिप्त रहने के लिए बाधित करती हैं तथा व्यक्ति सदा व्यस्तता, अभावग्रस्तता और चिंता भरी उलझनों का रोना रोते हुए यह सिद्ध करने का प्रयत्न करता है कि उसकी परिस्थितियाँ ही विकट हैं। ऐसी दशा में कुछ कर पाने को कैसे अपने कदम बढ़ाएँ ?

वस्तुतः यह स्थिति किसी की भी नहीं होती, जिसमें वह स्वार्थ के साथ परमार्थ का समन्वय न कर सके। यदि सुरसा जैसा मुँह फाड़े रहने वाली हविश की निरर्थकता सोची जा सके, औसत नागरिक स्तर का निर्वाह स्वीकार किया जा सके, मनुष्य जन्म की दुर्लभता पर विचार किया जा सके। उसके सदुपयोग की बात पर ध्यान दिया जा सके। मानवी गरिमा उपलब्ध होने पर मिलने वाले आत्मसंतोष, लोक सम्मान, व्यापक सहयोग एवं भविष्य की महान् संभावनाओं पर विचार किया जा सके, तो दूरदर्शी विवेकशीलता का स्पष्ट परामर्श एक ही होगा कि निर्वाह जुटाया तो जाए, पर उसी पर निष्ठावर कर पशु स्तर का हेय जीवन न जिया जाए। इस मार्ग पर चलते-चलते अपराधी, नर-पिशाच जैसी स्थिति ही पल्ले बँधती है, जिसमें लोक हैं न परलोक, न सुख हैं न शांति।

तृष्णाएँ आज तक किसी की पूरी नहीं हुई। आग में ईंधन डालते रहने पर वह बुझती नहीं वरन् और भी अधिक भड़कती है। एक कामना के पूरी होते-होते दस और नई कामनाएँ उठ खड़ी होती हैं। व्यक्ति की क्षमता और पात्रता सीमित है। आयुष्य भी थोड़ा है। अधिकांश समय तो सोने में, नित्य कर्म में, बचपन में, बुढ़ापे में निकल जाता है। समर्थता के कुछ वर्ष ही ऐसे बचते हैं, जिन्हें या तो पूरी तरह तृष्णा पर न्यौछावर कर दिया जाए या फिर उस अवधि में परमार्थ को भी सम्मिलित कर लिया जाए।

निर्वाह की वास्तविक आवश्यकताएँ बहुत सीमित हैं। तीन-तीन फुट लंबे दो हाथ मिलकर सहज ही इतना उपार्जन करते रह सकते हैं कि छः इंच परिधि का पेट आसानी से भरता रह सके। औसत नागरिक स्तर का निर्वाह किसी के लिए भी भारी नहीं पड़ता, रोटी, कपड़ा और मकान की आवश्यकता हर कोई सहज पूरी कर सकता है। घने शहरों की बात दूसरी है, पर साधारण ग्राम्य जीवन जीते हुए उच्च विचारों की दैवी संपदा सहज ही प्रचुर परिणाम में अर्जित की जा सकती है। जीवन की वास्तविक सार्थकता इसी में है भी। उन लोगों की बात दूसरी

है, जिन पर महत्त्वाकांक्षाओं की हविश रावण, कंस, दुर्योधन, जरासंध, हिरण्यकशिपु की तरह चढ़ी रहती है। जाना तो उन्हें भी खाली हाथ ही पड़ता है। वैभव किसी के भी साथ नहीं गया। उपभोग की मर्यादा भी बहुत सीमित है। शेष बटोरा हुआ वैभव तो जहाँ का तहाँ पड़ा रह जाता है। दूसरे मुफ्तखोर ही उस कृपण की कमाई पर गुलछर्ए उड़ाते हैं।

यदि किसी को भी दूरदर्शी विवेकशीलता की एक भी प्रकाश किरण उपलब्ध हो सके, तो उसे नए सिरे से विचार करना पड़ेगा। हविश को सीमित करके उस उद्देश्य पर विचार करना पड़ेगा, जिसके लिए यह सुर-दुर्लभ मनुष्य जन्म पवित्र धरोहर के रूप में प्रदान किया गया है।

जो भेड़िया धसान के लोक प्रचलन से तनिक ऊँचे उठकर जीवन संपदा के सदुपयोग पर विचार कर सकते हैं, उन्हें एक नया दृष्टिकोण अपनाना पड़ता है, उन्मादी हविश पर अंकुश लगाना पड़ता है और हलकी-फुलकी जिंदगी जीने की आदर्शवादी दिशाधारा अपनानी पड़ती है। कम खर्च का जीवन छोटा परिवार, कुटुंबियों को स्वावलंबी-सुसंस्कारी बनाने का प्रशिक्षण जिन्हें भी रास आने लगेगा वे देखेंगे कि निर्वाह की समस्या कितनी सामान्य थी और वह कितनी सरलतापूर्वक हल हो गई। समय का विभाजन ठीक प्रकार कर लेने पर भी स्वार्थ और परमार्थ का सही संतुलन बैठ जाता है।

आठ घंटा आजीविका कमाने के लिए, पाँच घंटा नित्य कर्म एवं अन्य कामों के लिए लगाया जाए, तो बीस घंटे में सभी सांसारिक प्रयोजन भली प्रकार सध जाते हैं। शेष चार घंटे ऐसे बचते हैं, जिन्हें परमार्थ के लिए सुरक्षित रखा जा सकता है। आलस्य और प्रमाद छाया रहे अनियमितता, अस्तव्यवस्तुता की आदत हो, तब तो अनेक छोटे-छोटे काम की कल-परसों पर धकेले जाते रहते हैं और वे सभी आधे-अधूरे, लँगड़े-लूले पड़े रहते हैं, पर यदि सतर्कता और नियमितता अपनाई जा सके, तो रोज कुआँ खोदने, रोज पानी पीने वाले भी जीवनोद्देश्य को पूरा करने वाले कर्मों के ढेरों सार्थक एवं महत्त्वपूर्ण कार्य कर-

सकते हैं। स्मरण रहे कि कर्तव्य पालन और पुण्य परमार्थ यह दो ही भगवान की उच्चस्तरीय आराधना में सम्मिलित किए जाते हैं।

व्यक्ति और परिवार की अभिनव संरचना समय की महती माँग है। इसे युग धर्म का निर्वाह भी कहा जा सकता है। इस निमित्त प्रत्येक विचारशील को, भावनाशील को अपना समयदान देना चाहिए, साथ ही आजीविका का एक अंश इसलिए नियमित रूप से निकालना चाहिए कि उसके सहारे मानवी गरिमा के पुनरुत्थान हेतु आवश्यक साधन जुटाने में कठिनाई न पड़े। हर भावनाशील को इतना तो करना ही चाहिए कि वह निजी निर्वाह के अतिरिक्त उस समाज का भी ध्यान रखे, जिसमें वह जन्मा, पला और समर्थ हुआ।

व्यक्तिवाद ही समस्त समस्याओं और अनाचारों का उद्गम है। मानवी गरिमा का निर्वाह वहाँ से आरंभ होता है, जहाँ से वह समूहवाद की, समाजवाद की नीति अपनाता है। मिलजुल कर रहने और मिल-बाँटकर खाने की मनोभूमि बनाता, कार्य पद्धति अपनाता है। उस समूहवाद का व्यावहारिक स्वरूप एक ही है अपने समय, श्रम और साधन को जितना अधिक संभव हो उतना लोक-कल्याण के लिए, सत्प्रवृत्ति संवर्द्धन के लिए लगाना आरंभ करें।

यदि उदात्तवाद की दृष्टि से सोचा जाए, तो भी उसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है। सद्गुण ही व्यक्ति की वास्तविक संपदा हैं। उन्हीं के आधार पर विविध विधि, भौतिक और आत्मिक संपदाएँ सफलताएँ उपलब्ध होती हैं। इन सज्जनोचित सद्गुणों के अभ्यास उपार्जन, सेवा-साधना के बिना और किसी प्रकार संभव नहीं होता। मेंहदी पीसने वाले के हाथ अनायास ही लाल हो जाते हैं। सेवा-साधना ही वह प्रयोग प्रक्रिया है, जिसे अपनाकर कोई व्यक्ति अपने गुण, कर्म, स्वभाव में उत्कृष्टता का समावेश कर सकता है। मात्र कल्पना करते रहने या सद्गुणों के संबंध में पठन-श्रवण करते रहने से मात्र जानकारी भर प्राप्त होती है। उन्हें जीवनचर्या में उतारना है, तो सद्गुणों के

लिए परमार्थ प्रयासों को सम्मिलित करना पड़ता है। यह अवसर जितने ऊँचे स्तर पर लोकनायकों को मिलता है, उतना अन्यत्र कहीं मिल सकना संभव नहीं।

विशुद्ध व्यक्तिगत स्वार्थ की दृष्टि से देखें और तनिक दूरदर्शिता अपनाएँ तभी प्रतीत होगा कि खुदगर्जी भरे जीवन की तुलना में सेवा भावी जीवनचर्या हर दृष्टि से लाभदायक रहती है। संसार में जितने भी मूर्धन्य एवं उच्चस्तरीय सम्मान प्राप्त व्यक्ति हुए हैं, वे किसी प्रकार घाटे में नहीं रहे। अपनी प्रामाणिकता, प्रखरता, भाव-संवेदना का बढ़ा-चढ़ा स्तर सिद्ध करने के उपरांत ही कोई व्यक्ति सर्व साधारण का विश्वास प्राप्त कर सकता है। यह विश्वास ही है, जिसके आधार पर किसी को बड़ी जिम्मेदारी के काम सौंपे जाते हैं। नेतृत्व उन्हीं के हाथ में रहता है, चाहे वह परिवार के मुखिया के रूप में मिले या बिरादरी के पंच चुने जाने के रूप में हो। आगे बढ़कर यही प्रामाणिकता छोटे-बड़े पदों के चुनाव में काम आती है। उन्हें निर्विरोध तक चुना जाता है। सरकारों में भी वे ही बड़ी जिम्मेदारियाँ निभाने के लिए नियुक्त होते हैं। सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक संस्थाओं में भी उन्हीं को नेतृत्व की बागड़ोर सौंपी जाती है। जन सहयोग से ही किसी को ऊँचा उठने का अवसर मिलता है, भले ही वह व्यापारिक स्तर का ही क्यों न हो ? प्रामाणिकता दुकानदार या फर्म ही अपनी विश्वसनीयता सिद्ध करके अधिकाधिक ग्राहकों का सहयोग-समर्थन प्राप्त करते हैं और दिन दूनी गति से प्रगति पथ पर आगे बढ़ते हैं। चोरी-चालाकी से जिन्होंने कुछ कमाया, वह दुर्व्यसनों में ही हवा की तरह उड़ गया। स्थिरता और प्रगति का वास्तविक लाभ तो उन्हीं को मिलता है, जिनने अपनी विश्वसनीयता प्रमाणित की। इस प्रकार का प्रमाण प्रस्तुत करने का सबसे सरल और सुनिश्चित उपाय यह है कि जन-सेवा के लिए किए गए अपने कार्यों की सूची सर्वसाधारण की आँखों के सामने फिरती रहने का अवसर प्रस्तुत करते रहा जाए।

किसी भी क्षेत्र में सराहनीय नेतृत्व करने वाले सत्पुरुषों की सूची पर दृष्टि डाली जाए, तो उसमें एक ही तथ्य उभर कर ऊपर आता है कि जो अपनी जीवनचर्या में सद्भावनाओं का समावेश किए रहे, जिनने लोक सेवा के क्षेत्र में बढ़—चढ़कर कार्य किए, उन्हें धन के, पुरस्कार के रूप में कोई लाभ भले ही न मिला हो, पर ऐसा निश्चित रूप से हुआ है कि उन्हें भरपूर सहयोग एवं सम्मान मिला। यह उपलब्धि बढ़िया किस्म का बीज उर्वर भूमि में बोने की तरह है, जो समयानुसार बढ़ता, फलता—फूलता और अपनी गरिमा से समूचे वातावरण को सुरभित—सुगंधित बनाता है। उन्हें विशिष्टता और वरिष्ठता प्राप्त होती है, यह भी कम गर्व—गरिमा की बात नहीं है। इसे पाकर व्यक्ति धन्य हो जाता है। ऐसे व्यक्ति आर्थिक दृष्टि से भी घाटे में नहीं रहते। नेतृत्व के क्षेत्र में कोई भी ऐसा नहीं देखा जाता, जिसे निर्वाह साधनों के लिए अभावग्रस्त स्थिति में रहना पड़ता हो। देव प्रतिमा पर पुष्प सदा बरसते ही रहते हैं। ऐसा भावी नर देवता भी प्रतिष्ठा तो पाते ही हैं, साथ ही आवश्यक सुविधाओं से भी वंचित नहीं रहते।



जिसने अपने को सुधार लिया, उसे दूसरे से कहने
या सुधारने का अधिकार मिल गया।

अभिव्यक्ति अंतःकरण का स्वरूप प्रस्तुत करती है।
वाक्‌चातुरी और अधिक बोलने में परस्पर कोई
संबंध नहीं।

उपयोगी साहित्य पढ़ने से अधिक चिरस्थायी और
उपयोगी मनोरंजन दूसरा कोई है नहीं।